ISSN: 2249-894X IMPACT FACTOR : 3.8014 (UIF)

REVIEW OF RESEARCH
UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514
VOLUME - 6 | ISSUE - 9 | JUNE - 2017

# 'शहर में कर्फ्यू' और हिन्दू–मुस्लिम दंगे संबंधी दृष्टि

डॉ. सुमित सिंह
Assistant Professor, Jawaharlal Nehru College,
Wadi, Nagpur .

''किसी की शबे वस्ल सोते कटे है
किसी की शबे हिज्र रोते कटे है
ये कैसी शब है या इलाही
जो न सोते कटे है न रोते कटे है''[१]

उपन्यासकार विभूति नारायण राय ने 'शहर में कर्फ्यू' उपन्यास में दंगा भड़कने के बाद, मुस्लिम इलाके में लगने वाले कर्फ्यू के जरिये, जिन–जिन घटनाओं पर प्रकाश डाला है, वे घटनायें बंद अंधेरे में जिदंगी जिनेवाले भारतीय मुसलमान ही रोजमर्रा की जीवनशैली को प्रस्तुत करता है। 'जो न सोते कटे है न रोते कटे है' इस वाक्य की तरह ही वे जिन्दगियाँ अपनी जिंदगी को अंगुलियो पर गिनती चली आ रही है और उनकी अंगुलीयों से मिलने वाले वोट जिसके हक में अदा किये जाते है, वही लोग उस हक का नजराना उनके लिये दंगो की शक्ल में वापस कर देते है। बेहद दर्दनाक है ये सिलसिला जो स्वाधीनता पूर्व से अबतक जारी है। कभी ना समाप्त होनेवाले इस सांप्रदायिक आग में अभी तक देश के कितने परिवार जलकर खाक हो चुके है। जैसे 'शहर में कर्फ्यू' उपन्यास में सईदा का परिवार और भी कई मुसलमान घर तबाह हो जाते है। जब भी कर्फ्यू लगता है, सबसे ज्यादा फजिहत मुस्लिम परिवारों की होती है। वह भी कौन से मुसलमान? ये वही मुसलमान है जो सांप्रदायिक ताकतों से बचते–बचते रोजी रोटी की तलाश में शहर के गंदे हिस्से में अपना घर बनाकर, छोटी–मोटी रोजी रोटी का जुगाड कर लेते है। फिर भास से अपना जीवन शुरु कर देते है कि अब चैन और सुकून से जिंदगी जियेंगे। लेकिन सांप्रदायिकता की चपेट से वे यहाँ भी नही बच पाते। जिदंगी बद से बदत्तर कैसी बनती चली जाती है इसका सटीक ब्यौरा, कर्फ्यू लगने के दौरान खूद उस शहर के एस. पी. रहे विभूती नारायण राय ने रेखांकित किया है।

विभूति नारायण राय खोजी किस्म के उपन्यासकार है उनका यह खोजी पन इस उपन्यास में और भी साफ सुथरे लहजे में उभरकर सामने आया है। कर्फ्यू को लेकर इलाहाबाद जो की भारत के तमाम हिन्दू–मुस्लिम संघर्षवाले शहरों में से एक रहा है, जैसे शहर के लोगों की मानसिकता का रेखांकन उपन्यास की शुरुवात में ही करते है।–''शहर में कर्फ्यू अचानक नहीं लगता था। पिछले एक हफ्ते में शहर का वह भाग, जहाँ हर दूसरे–तीसरे साल कर्फ्यू लग जाया करते है, इसके लिए जिस्मानी और मानसिक तौर पर अपने को तैयार कर रहा था। पूरी फिज़ा में एक खास तरह की सनसनी थी और

सनसनी को सूँघकर पहचानने वाले तजुर्बेदार जानते थे कि जल्दि ही शहर मे कर्फ्यू लग जाएगा। उन्हे सिर्फ इस बात से हैरत थी कि आखिर पिछले एक हफ्ते में कर्फ्यू टलता कैसे जा रहा था। बलवा करीब डेढ़ बजे शुरु हुआ। पौने दो बजते–बजते पुलिस की गाड़ियाँ लाउडस्पीकरों पर कर्फ्यू लगने की घोषणा करती घूमने लगी थी। हाँलाकि कर्फ्यू की घोषणा महज औपचारिकता मात्र रह गई थी क्योंकि पंद्रह मिनट में खुल्दाबाद सब्जी मंडी से लेकर बहादुरगंज तक जी. टी. रोड पूरी तरह खाही हो गई थी।.....अगस्त के आखिरी हफ्ते में हुए इस फसाद का रिहर्सल जून में हो चुका था, लिहाना लोगों को बताने की जरुरत नहीं थी कि ऐसे मौकों पर क्या किया जाना चाहिए।''[२] उपन्यास का यह शुरुवाती पैरा शहर की उस मानसिकता को दर्शाने के लिए रखा गया है, जो कर्फ्यू के लिये हमेशा तैयार रहते है। उपन्यासकार ने शुरुवात में ही यह संकेत दे दिया है। सांप्रदायिक शक्तियों को तो केवल आग लगाने भर की देर रहती है उसके बाद दंगा भड़कने की प्लानिंग करनेवाले लोग आराम से अपने घरो में दुबक जाते है। लेकिन शहर दंगो की आग में जलकर कर्फ्यू की शांति में अपनी सांसे गिनता रहता है। विभूति नारायण राय ने कर्फ्यू के माध्यम से जो–जो देखा और महसूस किया था, उन सभी का ब्यौरा उपन्यास में उपस्थित किया है।

''कुल मिलाकर डेढ़ घंटे में जो कुछ हुआ उसमें छह लोग मारे गए, तीस–चालीस लोग जख्मी हुए और लगभग तीनसौ लोग गिरफ्तार किए गए। ऐसा लगता था जैसे चील की तरह आसमान में मँडरानेवाले एक तूफान ने यकायक नीचे झपटा मारकर शहर को अपने मुकीले पंजों में दबोचकर नोच–बिथ डाला हो और फिर उसे पंजों मं फँसाकर काफी ऊपर उठ गया हो और ऊपर ले जाकर एकदम से नीचे पटक दिया हो। शहर बुरी तरह से लहूलुहान पड़ा था और डेढ़ घंटे के हादसे ने उसके जिस्म का जो हाल किया था उसे ठीक होने में कई महीने लगने थे।''[३]

शहर का जो वर्णन उपन्यासकार ने उपन्यास में किया, उसकी विभत्सता को देखकर दंगो के स्वरुप का अनुमान लगाया जा सकता है। उपन्यासकार की पैनी नजर दंगो पर बनी हुई थी। विभूति नारायण राय की सांप्रदायिक दृष्टि, दंगे को लेकर दृष्टिकोण 'शहर में कर्फ्यू' उपन्यास में सामने आता है। कर्फ्यू लगा दंगे के कारण लेकिन दंगा किस कारण से भड़का, इसका वर्णन उपन्यासकार ने किया है। जिसकारण का कोई मतलब नही बनता, महज एक छोटी सी घटना शरारत की शक्ल में होती है और दंगा आरंभ कर दिया जाता है।– ''हुआ कुछ ऐसा कि करीब डेढ़ बजे दिन में तीन–चार लड़के मिर्जा गालिब रोड, जी. टी. रोड क्रॉसिंग पर बैंक ऑफ बड़ौदा के पास एक गली से निकले और गाड़ीवान टोला के पास एक मंदिर की दीवाल पर बम पटक कर वापस उसी गली में भाग गए। जो चीज दीवाल पर पटकी गई वह बम कम फटाका ज्यादा थी। उससे सिर्फ तेज आवाज हुई। कोई जख्मीं नहीं हुआ। बम चूँकि मंदिर की दीवाल पर फैंका गया था इसलिए उस समय वहाँ मौजूद हिन्दूओं ने मान लिया कि बम फैंकने वाले मुसलमान रहे होंगे, इसलिए उन्होने एकदम से वहाँ से गुजरनेवाले मुसलमानों पर हमला कर दिया। सबसे पहले एक मोटरसाइकिल पर जा रहे तीन लोगों पर हमला किया गया। उनमें से एक मोटरसाइकिल गिरते ही कूदकर भाग गया।.....करीब–करीब एक साथ कई जगहों पर बम फेंकते और फायरिंग की घटनाएँ हुई। लगता था कि जैसे किसी सोची समझी योजना के तहत कोई अदृश्य हाथ इन सारी घटनाओं के पीछे काम कर रहा था। लगभग सभी जगहों पर बम फेंके गए। बम या फायरिंग में कोई जख्मी नही हुआ। इनका मकसद सिर्फ एक खास तरह का आतंक और तनाव पैदा करना लगता था और इसमें उन्हें काफी हदतक भी मिली।''[४]

इस उदाहरण से ऐसा लगता है मानों लेखक ताजा रिर्पोट सामने रखा है। घटना का एक–एक पहलु विस्तार में अपनी सटीकता की व्याख्यायित करता है। ऐसा लगता ह ैलेखक स्वंय वहा मौजूद था और पूरी घटना को घटते हुए अपनी आँखो से देखता है। लेकिन इसे इत्तेफाक कहे या और कुछ कथाकार पूरे घटना क्रम को एस. पी. की है सियत से परख रहा था। शायद इसी लिए सारा घटनाक्रम वह पुलिसिया भाषा में ब़या कर पाया है। क्योंकि लेखक ने जिस बेबाकि से पुलिस के क्रिया कलाप को बयान किया है उससे पुलिस के दंगो के दौरान निभाई जानेवाली भूमिका पर कई सवालियाँ निशान लग जाते है। कर्फ्यू लगते ही पुलिस जिस मुश्तैदी से मुस्लिम इलाकों की छानबीन करती है, वहा उसका दोहरा चरित्र उभरकर सामने आता है। इसके अलावा जिस तरह स ेलेखक घटना का ब्यौरा दे रहा है

उससे यह शक भी हो जाता है कि पुलिस और दंगा फैलानेवाले पहले से मिले हुए है और जानबुझकर मुस्लिम इलाके को कड़ी निगरानी के तहत रखा जा रहा है।

''एक साथ कई जगहों पर पुलिस पर बम फेंकने और फायरिंग की जो घटनाएँ हुई उनमें ज्यादातर जगहों पर कोई जखमी नहीं हुआ। अकसर बम फेंकी जानेवाली जगहों पर पुलिस खुले में होती और बम हमेशा दस–पंद्रह गज दाएँ–बाएँ किसी दीवाल पर फेंका जाता जिससे जख्मी कोई नहीं होता। लेकिन मान लिया जाता कि इसे मुसलमानों ने फेंका होगा इसलिए फौरन उस इलाके के सभी मुसलमान घरों की तलाशर ली जाती। ज्यादातर जगहों पर कुछ बरामद नहीं होता। कुछ जगहों पर गोश्त काटने के छुरे या थाने में जमा करने के आदेश के बावजूद धरों में पड़े लाइसेंसी असलहे बरामद होते और घर के मर्द २५ आमर्स एन्ट था दफा–१८८ में गिरफ्तार कर लिए जाते।''[५]

घटनाक्रम पर अगर गौर करें तो ऐसा लगता है बम मुसलमान नही हिन्दूओ द्वारा फेंका जा रहा है। विभूति जी भी इसी ओर इशारा कर रहें है। साथ ही उपन्यासकार यह भी इशारा करने के प्रयास में है कि यह कर्फ्यू अपने आप नही लगा है बल्कि इसके लगने के पीछे एक घटनाक्रम को प्लांट किया गया है। ताकि दंगा हो, और कर्फ्यू लगाकर दहशत का माहौल पैदा किया जाये। विभूति जी एक और तरफ इशारा कर रहे है कि पुलिस महकमें के कई लोग ऐसे भी वहा मौजूद थे जिन्हे यह पता ही था कि दंगे का सत्य क्या है? फिर भी वे चुप्पी साधे नाटकीय उपक्रम से अपने आप को जोड़े हुए अपनी ही पीठ थमथपाते नजर आते है। उन्हें कर्फ्यू से हताहत जनता से कोई सरोकार नही है। जब दंगे की शुरुवात हुई तब कुछ लोग उसमें जख्मी हुये थे। पुलिस जब मौके पर पहुँची तो वह उन लोगों की तलाश में जुट गई जिनकों दंगे के दौरान गंभीर चोट या गोली लगी थी। पुलिस को काफी मसल्ल्त के बाद आखि रवह घर मिल जाता है, जहाँ खून से सना हुआ व्यक्ति अब जख्मी नही था बल्कि लाश में तत्दील हो चुका था। उसके परिवार के सदस्यों के चेहरे पर रहनेवाली दहशत का वर्णन लेखक ने किया है।–''बारिश और सन्नाटे से भीगे हुए माहौल की स्तब्धता को भंग करती हुई रोने की स्वर–लहरियाँ हलके–हलके तैरती हुई सी उस समूह के कानों तक पहुँच रही थी। आवाज ने उन्हें ज्यादा चैतन्य कर दिया और वे लोग–आहिस्ता–आहिस्ता पाँव जमाकर उसी दिशा में बढ़ने लगे। थोडी ही देर बढ़ने पर आवाज कुछ साफ सुनाई देने लगी।.....यह रोले की एक अजीब तरह की आवाज थी। लगता है कि जैसे चार–पाँच औरते रोने का प्रयास कर रही हों और कोई उनका गला दबाए हो। भिंच गले से विलाप एक अलग ही चरित्र होता है–भयावह और अंदर से तोड़ देनेवाला। यह विलाप भी कुछ ऐसा ही था। जो स्वर छनकर बाहर पहुँच रहा था वह पत्थर दिल आदमी को भी हिला देने में समर्थ था।''[६]

विभूति नारायण राय ने दंगो से दहले शहर को बेहद साफ–साफ शब्दों में प्रस्तुत किया हैं। हिन्दूओ का दंगो के दौरन जिस प्रकार का रवैया रहता है, ओर पुलिस के साथ हिन्दूओं की जैसी साठ–गाँठ होती है। शहर के अन्य ईलाके जहाँ हिन्दूओं की तदात ज्यादा होती है उन इलाकों में कर्फ्यू का असर उतना नही होता जितना कर्फ्यू भयावह स्थिती में मुस्लिम बहुल इलाकों में होता है। ''कर्फ्यू लगने के साथ–ही–साथ एकबारगी बहुत सारी चीजें अपने आप ही हो गई। मसलन शहर का एक हिस्सा पाकिस्तान बन गया और उसमें रहने वाले पाकिस्तानी। यह हिस्सा जानसनगंज से अटाला और खुल्दाबाद से मुठठीगंज के बीच फैला हुआ था। हर साल दो–एक बार ऐसी नौबत जरुर आती थी जब शहर के बाकी हिस्सों के लोग इस हिस्से के लोगों को पाकिस्तानी करार देते थे। पिछले कई सालों से जब कभी शहर में कर्फ्यू लगता तो उसका मतलब सिर्फ इस इलाके में कर्फ्यू से होता। इसके परे जो शहर था वह इन हादसों से एकदम बेखबर अपने में मस्त डुबा रहता। जंक्शन से सिविल लाइंस की तरह उतरने वालों को यह अहसास भी नहीं हो सकता था कि चौक की तरफ कितना खौफनाक सन्नाटा पसरा हुआ है। कटरा, कीडगंज या सिविल लाइंस के बाजारों में जिंदगी अपनी चहल–पहल से भरपूर रहती और मुठठीगंज में लोग दिन के उन चंद घंटो का इंतजार करते जब कर्फ्यू में छूट होती और भेड़ो की तरह भड़भड़ाकर सड़को पर निकलकर नर्क से मुक्ति का अनुभव करते।''[७] भेदभाव पूर्ण वातावरण का निर्माण कर्फ्यू के दौरान पुलिस और आमजन द्वारा किया जाता है। पुलिस का जो रवैया हिन्दूओं के प्रति रहता है वह मुसलमानों के प्रति नही होता है। मुस्लिम बहूल इलाकों की तो हालात का चित्रण विभूति नारायण राय ने किया है उसमे साफगोई है क्योंकि यथार्थ तो यही है। भले ही दंगे के पीछे कोई भी राजनीतिक

मंशा रहती है लेकिन मुसलमानों की फजीहत किसी नर्क से कम नही रहती है। ''इस बार भी यही हुआ। शहर के पाकिस्तानी हिस्सें में कर्फ्यू लग गया। कुछ सड़के ऐसी थी कि जो हिंन्दू और मुस्लिम आबादी के बीच से होकर गुजरती थीं। उनके मुस्लिम आबादी वाले हिस्सें में कर्फ्यू लग गया और वहाँ जिंदगी पूरी तरह से थम गई जबकि हिंदू आबादी वाले हिस्सों में जिंदगी की रफ्तार कुछ धीमी पड़ गई।''[८] मुसलमानों और उनकी आबादीवाले इलाको को लेकर जिस प्रकार का द्वेषपूर्ण वातावरण निर्माण होता है इसका उदाहरण यहा लेखक प्रस्तुत करता है। विभूती जी की दंगे संबंधी दृष्टि यहा उजागर होती है।

उपन्यास में मुस्लिम पात्र सईदा के माध्यम से विभूति नारायण ने दंगे होने और कर्फ्यू लगने के बाद के मुस्लिम परिवारों का दृश्य उपस्थित किया है।–'' कर्फ्यू का ऐलान सईदा के लिए एक खौफनाक अनुभव था। अपने बच्चे को छाती से चिपकाए हुए वह पूरी तरह सैफुन्निसा की मर्जी पर खिंची चली जा रही थी।.....दरअसल सईदा को इस शहर में आकर रहते हुए सिर्फ चार साल हुए थे और अभी भी इस शहर में वह अपने को पूरी तरह अजनबी महसूस करती थी।''[९] सईदा जो की दो बच्चों की माँ है कर्फ्यू में मिलनेवाले ढिल का फायदा उठाकर अपने बच्चे का इलाज करवाने शहर में बाहर निकलती है लेकिन समय पर इलाज न मिलने से उसकी बच्ची की तबियत और भी बिगड जाती है। सईदा को इस बात का उतना ही डर सताता है जितना कर्फ्यू में फँसे रहने का इसी लिए वह अपनी बच्ची का इलाज कर्फ्यू की वजह से नही करवा पाती है।

'' कर्फ्यू शुरुवाती दौर में तो हर जगह लगा लेकिन जल्दी ही उन हिस्सों से उसका असर कम होने लगा जो पाकिस्तान नहीं थे। इन हिस्सों मे हिन्दू रहते थे और हिन्दू होने के नाते जाहिर था कि इस देश से सच्चा प्रेम करनेवाले वही थे। इसलिए शुरु में तो लोग जरुर कुछ घंटो के लिए अंदर कैद हुए लेकिन जल्दी ही वे घरों के दरवाजों और खिड़कियाँ खोलकर बाहर झाँकने लगे।''[१०]

एक तरफ मुस्लिम बहुल इलाकों में खौफ पसरा रहता है तो दूसरी ओर हिन्दू बहुल इलाकों में कर्फ्यू का असर नाम मात्र रहता है। दोहरे चरित्र का चित्रण लेखक यह बताने के लिए करता है कि मुसलमान ज्यादा खौंफ में जिता है वह मुसलमान भी जो केवल चार साल पहले शहर आया है और कर्फ्यू जैसी चिज के बारे में उसे कुछ पता नही है। फिर भी उनके भीतर एक अजीब सा खौफ बना रहता है।

सांप्रदायिक दंगो में या तनाव स्थिती में पुलिस प्रशासन की भेदभाव पूर्ण रीती–नीति की वजह से भी एकता बाधित होती है और समरसता का ढाँचा चरमरा जाता है। दंगो के दौरान कैसा वातावरण निर्मित रहता है यह एक पुलिस अधिकारी से बेहतर कौन बता सकता है। विभूति नारायण राय इलाहाबाद शहर में लगे कर्फ्यू के मददेनजर पुलिस की भूमिका को उलागड करते है।–''चाय बनकर जब तक बाहर आई तब तक कुछ घरां की खिड़कियों के पल्ले आधे–पूरे खूल चुके थे। कुछ बच्चों ने दरवाजों के बाहर निकलने की कोशिश की लेकिन सिपाहियों ने उन्हें डाँटकर अंदर कर दिया। पर जब चाय बाहर आने लगी तो देवीलाल ने रामसुख के दो लड़को को मदद के लिए बाहर बूला लिया। उनकी देखा–देखी अगल–बगल के दो लड़के और निकल आए। सिपाहियों ने बेमन मन से उन्हें डाँटा और फिर चाय पीनें में लग गए। लड़के भी दीठ के तरह पहले अपने दरवाजों से चिपके रहे और फिर धीरे–धीरे गली में उतर आए। थोडी देर में बच्चों की अव्छी–खासी भीड़ पुलिसवालों के इर्द–गिर्द इकठठी हो गई। वे ललचाई आँखो से उनके हथियार देखते रहे और उन हथियारों के नाम एक–दूसरे को बताते रहे। बीच–बीच में पुलिसवालों मे से कोई झिड़ल देता या अपनी लाठी जमीन पर पटक देता। बच्चे भागते और थोड़ी दूर पर फिर इकठ्ठा हो जाते। वे कोरस में गाते – हिंदू पुलिस भाई–भाई, कटुआ कौम कहाँ से आई।

पुलिसवाले हँसते और कोई गाली–वाली देकर फिर चाय परने में लग जाते। देवीलाल उनके खाने का इंतजाम करने लगे। कर्फ्यू हर दूसरे–तीसरे साल लगता था। पुलिसवाले हर बार इसी गली में या बगल की किसी गली में खाना खाते। यहाँ खाना खाकर मुहल्लेवालों से कुछ हँसी मजाक करते और फिर पाकिस्तानी गलियों में कर्फ्यू लगाये चले जाते।''[११]

पुलिस से यही जवान जब 'पाकिस्तानी गलियों' में जाते तो उनके रंग झट बदल जाते। वे गिरगिट के असली अवतार नजर आते। ''खट.....खट.....ठक.....ठक.....खोल वे.....अबे खोल दरवाजा। साँले कहाँ अपनी माँ की गोद में सोए बैठा है। खोलता है दरवाजा कि तोड़ दूँ।''

आवाजे–सिर्फ आवाजें पूरे माहौल में भर गई। आवाजें हाथों में दरवाजों को पीटने की थी। आवाजें बूटों से दरवाजों पर ठोकरें मारने की थीं, आवाज बच्चों के रोने और औरतों के चीखने की थीं, आवाजें कुंदो के पीठ या पैर पर टकराने से पैदा हो रही थी। ये आवाजें अचानक पैदा हुई और उन्होंने पूरे माहौल को मथ डाला। ''बोलते क्यों नहीं ससुर। अब जबान में ताला लग गया है।''कमरे में फर्श पर बच्चे नींद में गुम बिखरे थे और बालिग सदस्य दहशत से स्तब्ध खामोश बैठे थे। दरवाजा अपने हाथों से सिर ढक लिया। उन्हें उम्मीद थी कि अब डंडो, बूटों और बंदूक के बटों से उनकी पिटाई शुरु होगी। पिटाई शुरु भी होती, लेकिन एक औरत को चीख ने पुरे कमरे में रुकी हुई हवा में कप कँप पैदा कर दी। ' है मौला, अबका हमरी बिटिया की लाश बूट तले रौंदी जाएगी।' कमरे में घुसे हुए लोग चारों कोनों में फैलने के चक्कर में करीब–करीब नीचे लेटे हुए बच्चे को कुचलने से लगे थे। बच्चों के बीच में चादर से ढकी लाश थी। जैसे ही कोई बूट उस पर पहने को हुआ, सईदा की चीख निकल गई।

''क्या बकती है? किसकी लाश है?''

सईदा ने बिना जवाब दिए रोना जारी रखा। उसके साथ–साथ उसकी सास और ननद ने भी रोना शुरु कर दिया। बुढ़े ने बड़ी मुश्किल से स्थिती स्पष्ट की। दरवाजा बंद नही हो सकता था। बूढ़े ने टूटे दरवाजे के पल्लों को भेडकर उन पर एक टूटी मेज टिका दी। बाहर का दृश्य जरुर दन टूटे पल्लों से ओझल हो गया। लेकिन आवाजें आती रही।

'' इस बक्से में क्या है? खोल.....खोल....उसे भी।''
'' हूजूर, माई–बाप.....लड़की के जेवर–गुडिया है। इस जाड़े में शादी करनी है।''

'' खोल ता.....। देखे तभी तो पता चलेगा कि जेवर है या बम छिपाकर रखा है। तुम लोगों को कोई भरोसा वैसे भी वहीं करना चाहिए। पाकिस्तान से ला–लाकर बम–पिस्तौल इकठ्ठा करते हो।''
''खोल साले। एक–एक घर में इतनी देर करेंगे तो तीन्ही घर में सुबह हो जाएगी।''
'' सीधे से नही खोलेगा तो मुँह भी तोड़ देंगे और ताला भी। बंदूक का कुंदा दोनों तोड सकता है। फर्क सिर्फ इतना है कि ताला टूटते समय तेज आवाज करता है और आदमी का मुँह सिर्फ अस्फुट सी 'आह' की ध्वनि निकाल पाता है।''[१२]

इतनी जलालत झेलने के बाद भला कोई आदमी कैसे सुचित रह सकता है? इतना ही नही; जब उसे पता होता है कि सिर्फ आम आदमी को ही पिसना है हर जगह तब उसकी आस्थाएँ, उसका विश्वास, उसके मूल्यमान स्थिर नहीं रह पाते।

''अबे दरवाजा इतनी देर से क्यों खोला?''
''सो रहा था। नींद खुली तो खोला।''
''क्या! जबान लड़ाता है।'' तडाक! तडाक!
''मारा क्यों? मारने का अख्तियार किसने दिया तुम्हें?''

राइफल की बट आधी मुँह पर और आधी दरवाजे पर पड़ती है। पिच्च से मुँह से खून थूका जाता है और खून के साथ दो–तीन दाँत भी बाहर आ गिरते है।.....

''साले खाते यहाँ का हैं। देखते पाकिस्तान की तरफ हैं। गौर से तलाशी लेना, इस बदमाश वकील के यहाँ तो ट्रांसमीटर भी होगा। यही साले खबर देते हैं तभी सुबह बी. बी. सी बोलने लगता है।''

''पाकिस्तानी.....'' खून भरे मुँह को विकृत ढंग से चबा चबाकर नौजवान चेहरा फुँक्कारता है.... ''पहले नहीं की लेकिन अब जरुर करेंगे पाकिस्तानी जासूसी। इस साले देश में अगर जलालत ही मिलती है तो जरुर करेंगे पाकिस्तानी दलाली।''[१३]

विभूति नारायण राय ने अतिवादियों का वह चेहरा सामने लाने की कोशिश की है जो हिन्दू–मुस्लिम सांप्रदायिक विचारधारा को घोषित करते है। अतिवादीयों में पुलिस महकमा सबसे पहले पायदान पर काबिज है। हिन्दू गलियों में आराम से चाय, नाश्ता, खाना लेकर केवल मुस्लिम बस्तियों मे रहनेवाले लोगों को परेशान करना, बार–बार उन्हे पाकिस्तानी कहकर संबोधित करना, बेवजह उनके साथ मार पीट करना, दंगो के दौरान पुलिस द्वारा किये जाने वाले सत्यापित क्रिया कलाप बन चुके है। स्वंय भी पुलिस की नौकरी करते हुए, पुलिस को कटहारे में खडा कर विभूति नारायण राय ने तटस्थ उपन्यासकार, कथाकार लेखक होने का परिचय 'शहर में कर्फ्यू' उपन्यास में दिया है।

उपन्यास में गरिब मुसलमान परिवार जिनका दंगो से कोई सरोकार नही हैं, अतिवादीयों के आगे सब लाचार से नजर आते हैं, क्योंकि उनको मूल्यों और मानवता से कोई मतलब नहीं होता। वे तो अद बढाकर ऐसा कार्य करते हैं, जिससे अविश्वास की दरार खाई में बदल जाए। मंदिरो को मिसमार करना, मस्जिदों और मजारों को ढहा देना, संप्रदाय विशेष के लिए उग्र टिप्पणी करना, अपने संप्रदाय को सर्वश्रेष्ठ और अन्यों को कमतर और हीनतर बताना दन लोगों के लिए सामान्य सी बात है।

दंगे करानेवाले कौन लोग है इसका ब्यौरा भी लेखक अजीब और शांतिपूर्ण तरह से देता है। ''कोतवाली के आँगन में ऐसे लोगों की भीड़ थी जिन्हे शांती कमेटी की बैठक के लिए बुलाया गया था। ये लोग राजनीतिज्ञ, समाजसेवी, व्यापारी या डॉक्टर–वकील जैसे पेशों से जुडे हुए लोग थे जो हर साल दंगे के अवसर पर, त्यौहार वगैरह के मौको पर कोतवाली में बुलाए जाते थे। इन लोगों के चेहरे और भाषण इतने घिस–पीट गए थे कि कोतवाली की दीवारों भी बोल सकती होती तो इनके खड़े होते ही इनका भाषण दोहराने लगती।''[७९] आखिर दंगे रोकने के लिए इन लोगों को यहा क्यों बुलाया जाता है, ये लोग ही दंगो के पीछे होते है इन लोगों को पता होता है कि दंगा भडकाने वाले लोग कौन ह? फिर ये लोग शांति कमेटी बनाकर एक फरेब माहौल बनाते हैं।

''मुंशी हरप्रसाद पुराने स्वतंत्रता संग्राम सेनानी थे और पिछले बीस वर्षो से राजधानी से प्रकाशित होनेवाले अंग्रेजी दैनिक के संवादाता थे। सत्तर साल की उम्र में भी पूरे सक्रिय रहते थे। लोग उन्हें छेड़ते थे और वे हर बार कोई ऐसी बेवाल तल्ख टिप्पणी कर देते थे जिससे कोई न कोई तिलमिला जाता और काफी लोगों के लिए अपनी हँसी रोकना मुश्किल हो जाता था। आज वे खामोश थे और कई पत्रकारों के प्रयास करने पर भी कुछ नहीं बोले।

''क्या यह बात है मुंशीजी, आज तबियत कुछ ढीली लग रही हैं।'' ''तबियत ससुरी को क्या हुआ है–पर....'' मुंशीजी ने बात टालने की कोशिश की लेकिन फिर भी उन्हें लगा कि न बोलने पर छेड़खानी होगी इसलिए बोले–

''सच मैं सोच रहा था कि ये शांति कमेटी के नाम पर जो शंकरजी की बारात कोतवाली मे इकठ्ठी की गई है अगर इन सबको मीसा में बंद कर दिया जाए तो शहर में दंगा–फसाद अभी रुक जाए।''

''इन्ही को काहे बंद करते हैं जी। अरे अपने पत्रकार बंधुओ को भी बंद किजिए न, जो चटखारे ले–लेकर खबर छाप रहे हैं। मरेगा एक, इन्हें लाशें पच्चीस दिखाई देंगी। पटाखा पटाखा छूटेगा तो बम छापेंगे। हमारे साथ–साथ इन्हें भी बंद किजिएगा तभी दंगा रुकेगा।''[१४]

विभूति नारायण मुंशीजी के माध्यम से दंगे करानेवालों को गिनाते नजर आ रहे है लेकिन तटस्थ भाव से। मुंशीजी की बाते इतनी साफ है कि बस उन्होंने नाम भर नही लिया लेकिन जैसे उन्हे पता सबकुछ है। विभूति नारायण राय ऐसें उद्वरणो के माध्यम से सांप्रदायिकता की जड़ में जाकर उसके मूल कारणों को प्रस्तुत करने का प्रयास करते है।

''बरामदे के एक तरफ जोर–जोर से बोलने की आवाज आने पर लोगों का ध्यान उधर आकर्षित हो गया। फर्म खेमचंद जुगल किशोर के मालिक लाला राधेलाल चिढ़ाए जाने से आहत नाग की तरह फुक्कार रहे थे।

''ठीक है, दंगे में अनाज की कींमतें बढ़ेगी तो मेरा फायदा हो जाएगा। लेकिन फायदा किसे काटता है। मैं इतना तो पतित नहीं हूँकि अपनी विक्री बढ़ाने के लिए खुद दंगा करा दूँ। आप तो शर्माजी यह भी करा सकते है। आपको पाकिस्तान और मुस्लिम लीग के झंड़ों में फर्क नही मालूम है? यह भी

आपको मालुम है, खुल्दाबाद की मस्जिद की बगल में मुस्लिम लीग का दफ्तर है। फिर भी आपने मुस्लिम लीग के दफ्तर पर फहराने वाले झंडे की तस्वीर छापकर कैप्शन यह दिया कि मस्जिद पर पाकिस्तानी झंडा लहराया गया। अब बताइए दंगा आप करा हैं कि में।''[१५]

शांति कमेटी दंगा रोकने के लिए बनाई जाती है लेकिन इसका सच तो कुछ और ही होता है जो इस उद्धरण से सामने आता है। शांति कमेटियों के लोग केवल अपना फायदा तलाशते फिरते है उन्हें दंगे रुके चाहे ना रुके कोई फर्क नही पड़ता है यही लेखक दर्शाना चाहता है।

''दोनों लोगो एक कोने में खींचकर बैठ गए। उनके इर्द–गिर्द और भी लोग आ गए फिर बातचीत दंगे की शुरुवात, मरनेवालों की संख्या और नुकसानों पर केंद्रित हो गई। ''दंगा किसी ने शुरु किया हो,'' कामरेड सूरजभान दु:खी स्वर में बोले, ''एक बात अब बड़ी साफ दिखाई देने लगी है। आजादी के समय जब भी दंगे होते थे तो ऐसे लोगों की तादाद बहुत हुआ करती थी जो दंगा करानेवाली शक्तियों के खिलाफ खड़े होते थे। अब ऐसे लोगों की संख्या दिनों–दिन कम होती जा रही है।'' ''अजी अब तो पड़ोसी भी पड़ोसी को नही बचाता। पहले कम से कम पड़ोसी का यह भरोसा तो रहता था कि वह हमला नहीं करेगा। लेकिन अब तो यह भी नही रहा।''

''रामपाल सिंह पुराने–कम्यूनिस्ट हैं। पिछले बीस साल से कार्डहोल्डर हैं। उनका लड़का दंगे में मारा गया। मैं मातमपुर्सी करने गया तो दंग रह गया। इतना बड़ा आदमी कम्युनल हो गया है। खुले आम मुसलमानों के खिलाफ बोल रहा था। मैने कहा भी कि कामरेड तुम्हें मुसलमानों के खिलाफ नहीं बल्कि उन टेंडेन्सी के खिलाफ बोलना चाहिए जो दंगा कराती है। लेकिन कौन सुनता है। इस समय तो लगता है कि पूरा शहर हिंदू या मुसलमान में बँट गया है।''[१६]

शहर में कर्फ्यू लगने के बाद जिस तरह का माहौल खौफनाख मंजर तहिदल हो जाता है, यह उपन्यासकार ने उद्धृत करने का पूरा प्रयास किया है। एक कामरेड २० वर्षो से जिस दंगो के खिलाफ आवाज उठाता रहा है वह आज अपने बेटे के गुजरते ही मातम में डुबा मुसलमान कौम को ही कोसता नजर आता है। लेखक ने यह स्पष्ट रुप में सामने लाने का प्रयास किया है कि दंगो में कोई दोषी पकड़ा जाए या न पकड़ा जाए, लेकिन मुसलमान को दोषी मान लिया जाता है। सबको यही लगता है कि इन दंगो का दोषी मुसलमान ही है। मुसलमान कर्फ्यू के वक्त जिस जियालत को झेलता है उसका पुरा खाका उपन्यास प्रस्तुत करता है।

''मंच के पीछे कनात लगी थी। उस कनात से सटकर चार–पाँच मजिस्ट्रेट और पुलिस अधिकारी कुर्सियों को इस तरह डाले बैठे थे कि उनकी फस फुसाहट मंच पर बैठे उनके अधिकारियों तक न पहुँचे। जब कोई वक्ता पूरी गंभीरता से शहर को जलने से बचाने की अपील गला फाड़–फाड़ कर करता, ये लोग उसकी माँ–बहन करने लगते।''

''साला यहाँ का उपदेश दे रहा है। अपनी गली में जाकर छुरे बँटेगा।''

''इन्ही सालों को बंद कर दो, दंगा अपने आप रुक जाएगा।'' ''बंद कैसे कर दें, अफसरान इन्हें क्षमाद की तरह कोतवाली में बुलाकर चाय–समोसा खिलाते हैं।''

''अफसरान क्या करें। न खिलाएँ तो मंत्री डंडा कर देगा।''[१७]

इन सभी उद्धरणों से एक बात साफ हो जाती है कि दंगे के पीछे कौन है यह सभी जानते है लेकिन कुछ कर न सकने का मालल कुछेक को जरुर है।

''पं. अयोध्यानाथ दीक्षित शहर के विधायक थे। मंच पर हाकिमों के साथ बैठे थे लेकिन अपना भाषण खत्म करके नीचे चले आए थे। वे उद्विग्न थे क्योंकि यह दंगा उनके राजनीतिक अस्तित्व के लिए खतरनाक था। पिछले चुनाव के वक्त भी दंगा हुआ था लेकिन उस समय दंगा उनके हित में गया था। उनके पुराने प्रतिद्वंद्वी रामकृष्ण जायसवाल इस समय दंगे का फायदा उठा रहे थे। चुनाव एकदम सर पर था। उसें पुरा शक था कि दंगा रामकृष्ण जायसवाल ने ही कराया है। रामकृष्ण था तो पूरा हिंदूवादी लेकिन हानी बदरुद्धीन बीड़ी वाले से उसकी पटती थी खूब थी। पूरा शहर जानता था कि जायसवाल और हाजी जब मिलकर चाहें शहर में दंगा हो जाएगा चुनाव के समय दंगा होने का खतरा यही था कि

वोटर हिन्दू और मुस्लिम में बँट जाएँगे। मुसलमान हाजी बदरुद्दीन के पीछे गोला बंद होंगे तो हिंदू भी किसी हिंदू नेता की तलाश में जायसवाल के असमर्थन में एकजुट हो जाएँगे। इस चक्कर में मारे जाएँगे पं. अयोध्यानाथ दीक्षित।''[१८]

विभूति नारायण राय ने दंगे की आड़ में हिन्दूत्ववादी ताकतों, हिन्दुओ का मुसलमानों के प्रति जो रवैया रहता है उसे बेबाक तरिके उल्लेखित किया है। मुसलमान जिस परेशानी से गुजर रहा है उसकी चिंता किसी को नही बस हर कोई उन्हे पाकिस्तानी एजेंट घोषित करने पर तुला हुआ है। उनकी जिंदगी तो खौफ के साये में बरबाद हुई चली जा रही है। पुलिस का रवैया भी आपत्ति जनक दोहरे रुप में सामने आता है।

इस प्रकार लेखक को दंगो से संबंधित दृष्टि साफ गोचर होती है। लेखक रामकृष्ण जायसवाल और हाजी बदरुद्दीन की मिली भगत उनका खुलेआम मिलना इत्यादी इस बात को भी दर्शाता है कि राजनीतिक प्रपंच किस तरह गुपचुप और खुले दोनों स्तरों पर पसर रही है। राजनीति में अपने लाभ के लिए असंख्य लोगों की धर्म और जाति के नाम पर बाटा जा सकता है। और यही उपक्रम दोहराया जा रहा है। सबसे आसान है दंगे करवाना फिर उसका राजनीतिक लाभ हासिल करना।

१. शहर में कर्फ्यू तथा अन्य चार उपन्यास, विभूति नारायण राय, पृ. १३०।
२. वही, पृ. ९३।
३. वही, पृ. ९४।
४. वही, पृ. ९४, ९५।
५. वही, पृ. ९५।
६. वही, पृ. ९८।
७. वही, पृ. १०३।
८. वही, पृ. १०३।
९. वही, पृ. १०५।
१०. वही, पृ. १०७।
११. वही, पृ. १११।
१२. वही, पृ. १५०।
१३. वही, पृ. १५१।
१४. वही, पृ. १३८।
१५. वही, पृ. १३९।
१६. वही, पृ. १४०।
१७. वही, पृ. १४४।
१८. वही, पृ. १४५।
१९. वही, पृ. १४६।